अध्ययन सामग्री

विषय- हिन्दी

सेमेस्टर- प्रथम(1) स्नातकोत्तर

प्रश्न पत्र- प्रथम(cc-1)

साहित्यिक हिंदी के रूप में

खड़ी बोली का उदय और विकास

पदनाम- डॉ स्मिता जैन

एसोसिएट प्रोफेसर

हिंदी विभाग

एच डी जैन कॉलेज, आरा

Scanned with CamScanner

साहित्यिक हिन्दी के रूप में खड़ी बोली का उदय और विकास —

देश के भिन्न-भिन्न भागों में मुसलमानों के फैलने तथा दिल्ली की दरबारी शिष्टता के प्रचार के साथ ही दिल्ली की खड़ी बोली शिष्ट समुदाय के परस्पर व्यवहार की भाषा हो चली थी। अमीर खुसरो ने विक्रम की चौदहवीं शताब्दी में ही ब्रजभाषा के साथ-साथ खालिस खड़ी बोली में कुछ पद्य और पहेलियाँ बनाई थी।

औरंगजेब के समय से फारसी मिश्रित खड़ी बोली या रेख्ता में शायरी भी शुरू हो गई। इस प्रकार खड़ी बोली को लेकर उर्दू साहित्य उठ खड़ा हुआ, जिसमें आगे चलकर विदेशी भाषा के शब्दों का मेल भी बराबर बढ़ता गया।

मुगल साम्राज्य के ध्वंस से भी खड़ी बोली के फैलने में सहायता मिली। दिल्ली, आगरा आदि पछाँही शहरों की समृद्धि नष्ट हो चली थी और लखनऊ, पटना, मुर्शिदाबाद आदि नई राजधानियाँ चमक उठीं। जिस प्रकार उजड़ी हुई दिल्ली को छोड़कर मीर, इंशा आदि कवि उर्दू शायर पूरब की ओर आने लगे, उसी प्रकार दिल्ली के आसपास के प्रदेशों के हिंदू व्यापारी जातियाँ (अग्रवाल, खत्री आदि) जीविका के लिए लखनऊ, फैजाबाद, प्रयाग, काशी, पटना आदि पूरबी शहरों में फैलने लगीं।

इनके साथ साथ उनकी बोलचाल की भाषा खड़ी बोली भी लगी चलती थी। धीरे धीरे पूरब के शहर में भी इन पश्चिमी व्यापारियों की प्रधानता होने लगी। इस प्रकार बड़े शहरों के बाजार की व्यावहारिक भाषा भी खड़ी बोली हुई।

यह खड़ी बोली असली और स्वाभाविक भाषा थी, मौलवियों और मुंशियों की उर्दू ए मुअल्ला नहीं। कुछ लोगों का यह कहना या समझना कि मुसलमानों के द्वारा ही खड़ी बोली अस्तित्व में आई और उसका मूल रूप उर्दू है जिससे आधुनिक हिन्दी गद्य की भाषा अरबी फारसी शब्दों को निकालकर गढ़ ली गई, शुद्ध भ्रम या अज्ञान है।

इस भ्रम का कारण यही है कि देश के परम्परागत साहित्य की जो संवत् 1900 के पूर्व तक पद्यमय ही रहा-भाषा ब्रजभाषा ही रही और खड़ी बोली वैसे ही एक कोने में पड़ी रही जैसे और प्रान्तों की बोलियाँ। साहित्य या काव्य में उसका व्यवहार नहीं हुआ।

पर किसी भाषा का साहित्य में व्यवहार न होना इस बात का प्रमाण नहीं है कि उस भाषा का अस्तित्व ही नहीं था। उर्दू का रूप प्राप्त होने के पहले भी खड़ी बोली अपने देशी रूप में वर्तमान थी और अब भी बनी हुई है। साहित्य में कभी कभी कोई इसका व्यवहार कर देता था।

भाग 2 लेकर [illegible]

के समय तक अपभ्रंश काव्यों की जो परम्परा चलती रही उसके बीच खड़ी बोली के प्राचीन रूप की भी झलक अनेक पद्यों में मिलती है।

उनके उपरान्त भक्तिकाल के आरंभ में निर्गुणधारा के संत कवि कबीर आदि खड़ी बोली का व्यवहार अपनी सधुक्कड़ी भाषा में किया करते थे। कबीर —

"कबीर मन निर्मल भया जैसा गंगा नीर।"

अकबर के समय गंग कवि ने 'चंद छंद बरनन की महिमा' नामक एक गद्य पुस्तक खड़ी बोली में लिखी थी।

अकबर और जहाँगीर के समय में ही खड़ी बोली भिन्न-भिन्न प्रदेशों के शिष्ट समाज के व्यवहार की भाषा हो चली थी। दिल्ली राजधानी होने के कारण जब से शिष्ट समाज में भाषा का व्यवहार वहीं से इधर-उधर कुछ पुस्तकें इस भाषा के गद्य में लिखी जाने लगीं।

इसके पश्चात् विक्रम संवत् 1798 में रामप्रसाद निरंजनी ने 'भाषा-योग-वाशिष्ठ' नामक ग्रन्थ बहुत साफ-सुथरी खड़ी बोली में लिखा। उसके बाद पं. दौलतराम ने 'पद्मपुराण' का अनुवाद खड़ी बोली में किया। किन्तु भाषा उतनी परिमार्जित नहीं है जितनी योग-वाशिष्ठ की। अतः इस योग-वाशिष्ठ को परिमार्जित खड़ी बोली गद्य की प्रथम पुस्तक और निरंजनी जी को खड़ी बोली गद्य का प्रथम प्रौढ़ लेखक मान सकते हैं।